यह 'मेरी' नहीं, 'उनकी' दुनिया है!

दिलीप

भारत जैसे विविधता भरे देश में राज्य स्तर पर नए सिरे से पाठ्यपुस्तकें बनाने की कई सामाजिक, राजनैतिक व शैक्षिक वजहें हो सकती हैं। उनमें से एक प्रमुख वजह उन पाठ्यपुस्तकों में राज्य की सांस्कृतिक-सामाजिक-भौगौलिक-आर्थिक विविधताओं को पर्याप्त व उपयुक्त स्थान देना है ताकि पाठ्यपुस्तकें उस राज्य के बच्चों के सीखने के लिए उपयुक्त संदर्भ (context) प्रस्तुत कर सकें। यह सीखने में आत्म-निर्भर बनने एवं सीखने में सार्थकता तलाशने के लिए जरूरी है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (एनसीएफ 2005) में भी कहा गया है, ''पाठ्यचर्या का वर्तमान सरोकार बच्चों को सार्थक अनुभव देने वाली तथा समाहित करने वाली शिक्षा प्रदान करने का है। पाठ्यपुस्तक संस्कृति से दूर हटने का प्रयास भी है जिसके लिए यह भी जरूरी होगा कि हम विद्यार्थियों व सीखने की प्रक्रिया के बारे में जो सोचते हैं उसमें मूलभूत बदलाव लाएं। अतः बालकेंद्रित शिक्षा के तात्पर्य को गहराई से देखने की आवश्यकता है। जिसका अर्थ बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। ...इसलिए शिक्षा की योजना ऐसी हो कि वह विशेषताओं व जरूरतों की विशाल विविधताओं के तहत भौतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक प्राथमिकताओं को संबोधित करे। ....बच्चों को इतना सक्षम बनाए कि वे अपनी आवाज ढूंढ़ सकें, ...और अपने अनुभवों को स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ सकें'' (एनसीएफ 2005, पृ. 15)। ''यह आवश्यक है कि हमारे सभी बच्चे यह महसूस करें कि उनका घर, उनका समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्त्वपूर्ण हैं'' (वही, पृ. 16, अध्याय-2, विद्यार्थी को संदर्भ में रखना)। राजस्थान राज्य द्वारा नवनिर्मित पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों में संदर्भीकरण के महत्त्व को रेखांकित करते हुए आमुख में कहा गया है, ''सीखने में बच्चों का अपना सामाजिक संदर्भ और उनकी भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसीलिए इस पुस्तक में बच्चों की विविध सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों और भाषायी विविधता (बहुभाषिकता) को उनके सीखने का मजबूत आधार माना गया है।'' अतः स्पष्ट होता है कि पर्यावरण अध्ययन की इन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के पीछे संदर्भीकरण (contexfualization) करना एक प्रमुख व महत्त्वपूर्ण वजह रहा होगा।

हम एनसीएफ 2005 के सिद्धांतों के साथ इन पाठ्यपुस्तकों के

लेखक परिचय

पिछले करीब 15 वर्षों से विभिन्न शैक्षिक संगठनों में आरंभिक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षाक्रम निर्माण, शिक्षक प्रशिक्षण एवं सामग्री विकास से जुड़े रहे हैं। आजकल रूम टू रीड, नई दिल्ली में कार्यक्रम अधिकारी के तौर पर कार्यरत हैं और टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोश्यल साइंसेज, मुम्बई से एम.ए. (आरंभिक शिक्षा) कर रहे हैं।

निर्माण के नजरिए को (जिसे इन पुस्तकों में 'आमुख' व 'शिक्षकों के लिए' के अंतर्गत लिखा भी गया है) ही आधार बनाकर यह समझने की कोशिश करेंगे कि 'मेरी दुनिया' नामक यह पाठ्यपुस्तकें असल में उन बच्चों की दुनिया से कितनी संगत हैं जो इसके पाठक हैं? यह उन बच्चों को इस बात का कितना अहसास दिला पाती हैं कि 'उनकी दुनिया और पाठ्यपुस्तक की दुनिया में कोई रिश्ता है या यह पाठ्यपुस्तकें भी उनकी अपनी दुनिया से उतनी ही अनजान हैं जितनी की आमतौर पर दूसरी पाठ्यपुस्तकें होती हैं जो कि जानबूझकर किन्हीं खास वर्गों के साथ सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक गैर-बराबरी और बहिष्करण के उद्देश्य से बनाई गई होती हैं।

पाठ्यपुस्तकों के आमुख में यह कहा गया है कि इनके विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक व क्षेत्रीय संदर्भीकरण के साथ-साथ अन्य शैक्षिक पहलुओं जैसे संवैधानिक मूल्य, सीखने के सिद्धांत, समावेशी शिक्षा आदि को प्रमुख आधार माना है। आगे हम यह भी देखने की कोशिश करेंगे कि यह पाठ्यपुस्तकें किस हद तक इन चीजों के साथ न्याय कर पाती हैं और उन पर खरी उतरती हैं।

पाठकों को यह बता दें कि अभी तक पर्यावरण अध्ययन की कक्षा तीन और पांच की दो ही पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनका शीर्षक 'मेरी दुनिया' रखा गया है। कक्षा तीन की पाठ्यपुस्तक में 18 और कक्षा पांच की पाठ्यपुस्तक में 22 यानी दोनों को मिलाकर कुल 40 पाठ हैं। यदि इन पाठों की बनावट को देखें तो 40 पाठों में से 30 (75 प्रतिशत) पाठों की शुरुआत एक लिखित प्रसंग/घटना (संदर्भ) से होती है। प्रसंग/घटना के बीच-बीच में और पाठ के अंत में बच्चों के लिए सवाल दिए गए हैं। सिर्फ छः (15 प्रतिशत) पाठ ऐसे हैं जो सीधे बच्चों के अनुभवों से शुरू होते हैं। शेष पाठ किसी चित्र या कविता से शुरू होते हैं।

'ज्ञान' का वर्चस्व बनाम बच्चे की दुनिया

लिखित प्रसंगों की सीखने की शुरुआत में सर्वाधिक उपयोग यह जांचने के लिए प्रेरित करता है कि यह लिखित प्रसंग कितने उपयुक्त हैं। इसके लिए हमें यह देखना होगा कि इन प्रसंगों में किसके ज्ञान, संस्कृति, परंपराओं व मूल्यों को स्थान व तवज्जो देकर वर्चस्व स्थापित किया गया है और किसकी अनदेखी की गई है। देखना होगा कि कहीं यह प्रसंग किसी पूर्वाग्रह (biases) से तो ग्रसित नहीं हैं जो छिपी पाठ्यचर्या (hidden curriculum) के रूप में अपनी मंशाओं को लेकर आती है।

तीसरी कक्षा के पहले पांच पाठों में से तीन पाठों की शुरुआत संवाद शैली से होती है। इन संवादों में कुल 13 पात्रों के नाम (नानू, चंदा, दिलीप, शिवानी, कमली, इंद्रमल, समीर, मोहन, राधा, नैना, राजू, नेहा, मुकेश) आए हैं तथा दोनों पाठ्यपुस्तकों के जिन प्रसंगों में संवाद के दौरान पारिवारिक रिश्तों के संबोधनों का उपयोग किया गया है, वे सिर्फ मां, मम्मी, पापा, पिताजी, दादाजी, दादीजी, चाचाजी, चाचीजी, बुआ, मामा, मामी, नाना, नानी, ताऊजी, इत्यादि तक सीमित हैं। प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में क्षेत्रीय, सांस्कृतिक व सामाजिक विविधता को प्रकट करने वाले संबोधन जैसे माई, बीजी, अम्मा, नानो सा, अम्मी, अब्बु, मां सा, दादो सा, खाला, काको सा, काकी सा इत्यादि के उपयोग का नितांत अभाव है। साथ ही पाठ्यपुस्तकों में ऐसे स्थान, सवाल या निर्देश नहीं हैं जो बच्चों के संदर्भ के साथ इनका रिश्ता कायम करने के अवसर देते हों। इन्हें देखकर आसानी से इस नतीजे पर पहुंचा जा सकता है कि इन सभी पात्रों के नाम, रिश्तों के संबोधन व परिवार का ढांचा किस धर्म व किस वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और वे कौनसे बच्चे हैं जिनके लिए यह पाठ खुद को जोड़कर देख पाने की संभावनाएं पैदा कर रहे हैं और किन बच्चों को इस संभावना से वंचित कर रहे हैं।

यदि आप राजस्थान राज्य के स्कूलों पर एक नजर दौड़ाएं तो आपको अंदाज हो जाएगा कि यह पाठ्यपुस्तकें जिन बच्चों के हाथों में जाएंगी उनमें से अधिकांश बच्चे ग्रामीण इलाकों व वंचित वर्गों के बच्चे होंगे। उनमें से बहुत से तो ऐसे होंगे जो बहुत ही अभावों (आर्थिक एवं भावनात्मक) में जीवन जी रहे होंगे और बहुत से ऐसे होंगे जो पहली पीढ़ी के सीखने वाले होंगे। वे पाठ्यपुस्तकों में उपयोग की गई इस मध्यम वर्ग की भाषा व संबोधनों से कैसे अपना

रिश्ता जोड़ पाएंगे, यह अपने-आपमें विचारणीय विषय है। यही नहीं 'मेरी दुनिया' के प्रसंगों में जिस तरह का संदर्भ दिया गया है, वहां स्कूल ऐसा है जो बच्चों को कभी पिकनिक पर तो कभी चित्तौड़ घुमाने लेकर जाता है, जहां बच्चे गर्मियों की छुट्टियों में सरिस्का घूमने जाते हैं और गाइड (मार्गदर्शक) को किराए पर लेते हैं। वे अपनी मां के साथ स्कूटी पर घूमते हैं और बच्चों की मां रोज सुबह बच्चों का नाश्ता तैयार करती है। बच्चे सज-धजकर अपना जन्म दिन मनाते हैं व रिश्तेदारों को दावत दी जाती है तथा फल व सब्जियों की प्रदर्शनी देखने जाते हैं। ऐसे रेस्टोरेंट में जाते हैं जहां पिज्जा, बर्गर, पास्ता, नूडल्स मिलते हैं इत्यादि। यह सारे उदाहरण इस बात के लिए काफी हैं कि इनके द्वारा न सिर्फ शहरी मध्यमवर्गीय मानसिकता को पोषित किया जा रहा है बल्कि एक बड़े वर्ग (वंचित) के जीवन, अनुभव व ज्ञान की अनदेखी व उनके प्रति असंवेदनशीलता प्रदर्शित करके उन्हें शिक्षा से बाहर धकेलने (exclusion) की कोशिश भी की जा रही है। जबकि 'मेरी दुनिया' के आमुख में यह कहा गया है कि यह पुस्तकें बच्चों के सामाजिक संदर्भ, बहुभाषिकता व विविधतापूर्ण संस्कृति को ध्यान में रखकर समावेशी शिक्षा (inclusion) के लिए तैयार की गई हैं।

उपरोक्त सभी उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि इन पाठ्यपुस्तकों का उपयोग 'सांस्कृतिक पूंजी' के माध्यम से हिंदू-शहरी-मध्यमवर्गीय नजरिए व विचार को पोषित करके समाज में सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक असमानता को बढ़ावा देने वाला है। जब स्कूल एवं शिक्षा इस तरह चुने हुए विशेष सांस्कृतिक पूंजी, ज्ञान, परंपराओं व मान्यताओं के द्वारा समाज में किसी वर्ग विशेष के सामाजिक वर्चस्व (hegemony) को स्थापित करके विभिन्न तरीकों से सीखने के अवसरों में अंतर पैदा करते हैं। यह स्कूल से बहिष्करण (exclusion) व सामाजिक असमानता को न सिर्फ बढ़ावा देता है बल्कि मौजूदा अन्यायपूर्ण सामाजिक और आर्थिक ढांचे के प्रस्तुतिकरण व प्रतिनिधित्व के द्वारा पुनर्स्थापित करता है और उसे इस तरह का बनाता है कि वह जारी रहे। उसकी पुनरावृत्ति होती रहे।

संवैधानिक मूल्य बनाम परंपरावादिता

'मेरी दुनिया' के आमुख में कहा गया है कि इसमें विविधता भरी संस्कृति, हमारे संवैधानिक मूल्यों के साथ ही जेण्डर, धर्म, जाति, भाषायी विविधता इत्यादि के प्रति संवेदनशीलता रखते हुए समावेशी शिक्षा के विचार को समाहित करने की कोशिश की गई है। सीखने के सिद्धांतों की दृष्टि से यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। परन्तु 'मेरी दुनिया' के पाठों को देखने पर निराशा ही हाथ लगती है। इन पाठों को देखकर ऐसा लगता है कि यह पाठ्यपुस्तकें न सिर्फ संवैधानिक मूल्यों के स्थान पर परंपरावादी व वर्चस्वशाली नजरिए को पोषित और प्रस्तुत करती हैं बल्कि ऐसे सवालों व 'द्वंद्व' को कक्षा में लाने पर मौन साध लेती हैं जिनके द्वारा समता और न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों को बच्चों के बीच लाया जा सकता था। जबकि द्वंद्व को शिक्षाशास्त्रीय कार्यनीति बनाकर प्रयोग करने से हम बच्चों को इस योग्य बना सकते हैं कि वे द्वंद्व को न केवल विश्लेषित कर सकें अपितु उससे निपटने में सक्षम बन सकें और जीवन में इसकी भूमिका के प्रति जागरूकता पैदा हो (एनसीएफ 2005, पृ. 27)। इस बात को कुछ उदाहरणों की मदद से देखा जा सकता है।

'मेरी दुनिया' में जाति आधारित असमानता व छुआछूत के बारे में एक प्रसंग है (पृ. 10, कक्षा-3) जिसमें एक बच्चा अपने चाचा के कहे अनुसार शिक्षक से कहता है कि वह चंदा (संभावित दलित बालिका) को स्कूल के हैण्डपंप से पानी नहीं भरने दे। जरा देखिए कि पाठ्यपुस्तक में शिक्षक के माध्यम से क्या कहलवाया गया है, "चूंकि यह सरकारी हैण्डपंप है और सरकारी जमीन पर लगा है इसलिए यहां किसी के साथ भेदभाव नहीं करेंगे"। इस घोर अमानवीय व असंवैधानिक विचार पर पाठ्यपुस्तक सिर्फ इतना संदेश/तर्क देती है कि चूंकि शिक्षक एक सरकारी सेवक है और यह सरकारी जमीन पर सरकार द्वारा लगाया गया हैण्डपंप है! इसलिए यहां भेदभाव नहीं किया जा सकता। छुआछूत कानूनी अपराध है, इस पर पाठ्यपुस्तक न तो कोई साफ-सुथरा दृष्टिकोण अपनाती है और न ही चर्चा के माध्यम से (वैसे भी इस पाठ्यपुस्तक में चर्चा के माध्यम से नतीजों पर पहुंचने के न के बराबर ही अवसर हैं) इस समस्या को समझने में बच्चों की मदद करती है। अपितु आम जीवन में छुआछूत व भेदभाव पर सवाल उठाने और मानवीय

गरिमा की जरूरत को सामने रखने के बजाय पुस्तक इसे मौन स्वीकृति प्रदान कर रही है। इसी तरह 'कौन करे सफाई' (पृ. 64 से 72 कक्षा-5) नामक पाठ में मैला व गंदगी की सफाई व मैला ढोने की समस्या को आधुनिक मशीनों व अपना काम खुद करने मात्र से हल होने वाली समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है (जबकि पाठ्यपुस्तक की शुरुआत में 'शिक्षकों के लिए' के अंतर्गत व्यापक सामाजिक सरोकारों के विकास की बात की गई है। वहां सफाई के कामों व जाति आधारित सफाई का काम करने वालों को एक साथ रखते हुए उनके प्रति समाज में किसी भी प्रकार का दुराग्रह न होने की बात कही गई है, वह भी बिना किसी सामाजिक शोध व प्रमाण के)। पाठ न तो इसके साथ जन्म आधारित जाति व्यवस्था के संबंधों को उजागर करता है, न ही सफाई के आम काम व जाति विशेष द्वारा किए जाने वाले सफाई के कार्य की प्रकृति में फर्क करता है, न इसके असमानता आधारित अमानवीय पक्षों को सामने लाता है। यानी समालोचनात्मक चिंतन के अवसर 'मेरी दुनिया' में नहीं प्रदान किए जाते जबकि एनसीएफ 2005 में विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र के अंतर्गत राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक पहलुओं के संदर्भ में समालोचनात्मक चिंतन के विकास पर काफी बल दिया गया है (बॉक्स, पृ. 27)।

दोनों पाठ्यपुस्तकों में दो पाठ 'हम और हमारा परिवार' (कक्षा-3) व 'अपने रिश्ते अपनी खुशियां' (कक्षा-5) परिवार की अवधारणा को समझने के लिए दिए गए हैं। दोनों ही पाठ विवाह आधारित पारंपरिक हिंदू पुरुषवादी परिवार की अवधारणा व ढांचे को प्रस्तुत करते हैं जहां एक सदस्य की शादी आखा तीज (अक्षय तृतीया, यह हिंदुओं में विवाह का विशेष अवसर होता है) पर हो रही है। विवाह में निमंत्रित किए जाने वाले अतिथियों की सूची पिता व दादा मिलकर तैयार करते हैं व मां इसमें सहयोग मात्र करती है। मेहमानों को अलग-अलग शहरों में कार्ड देकर आमंत्रित करने का काम भी पिताजी ही करते हैं। दादाजी 'जोर' से बोलते हैं। पिकनिक पर जाने के लिए खाना मां ही बनाती है। नानी अपनी उसी पारंपरिक भूमिका में है जिसका काम बच्चों को कहानी सुनाना होता है, इत्यादि-इत्यादि (पृ. 47, 48, 50, कक्षा-3)। एक अलग प्रसंग में एक मुस्लिम युगल (झुम्मन चाचा-चाची) अपने ही रिश्तेदारों में से एक बालिका को गोद लेता है क्योंकि उनके कोई बच्चा नहीं है जबकि दूसरी जगह दो जुड़वां लड़कियां पैदा हुई हैं। पूरी पाठ्यपुस्तक में (पारिवारिक संदर्भों में) पहली बार सिर्फ यहीं एक मुस्लिम परिवार का जिक्र हुआ है। यह प्रसंग आगे बताता है कि इस गोद ली हुई लड़की ने तीन बच्चों की जान बचाकर एक महान व नेक काम किया (पृ. 44, कक्षा-5)। आखिर उसे गोद ली हुई लड़की होने के कारण अपने वजूद को सिद्ध जो करना था! इन दोनों पाठों में पाठ्यपुस्तक बच्चों से अपने कुछ रिश्तेदारों के नाम लिखने को कहती है और यह भी मानकर चलती है कि सभी बच्चों के अपने भाई, बहिन, मामा, मामी, मौसी, ताऊ, चाचा, चाची, इत्यादि पक्के तौर पर होंगे ही। पहली बात यह जरूरी नहीं कि सभी बच्चों के ऐसे रिश्तेदार हों ही। दूसरी बात यह हो सकती है कि यह रिश्ते अतीत में रहे हों व वर्तमान में न हों, जो उन्हें मायूस होने व पाठ में अपना वजूद ढूंढ़ने से वंचित कर सकता है। इन दो पाठों के अलावा कुल सात पाठ इन पाठ्यपुस्तकों में ऐसे हैं जहां संवाद, किसी एक परिवार के सदस्यों के बीच चलता है। यह पाठ पुरुष व महिलाओं के बारे में बैद्धिक व शारीरिक श्रम, वर्चस्व व पुरुषत्व के पारंपरिक नजरियों को ही प्रस्तुत व पुष्ट करते हैं। जैसे, एक पाठ (खाना पकाना, पृ. 21, कक्षा-3) के प्रसंग में जहां एक बच्चे के पापा को खाना बनाना सिखाने के लिए बुलाया जाता है। बड़े ही बनावटी ढंग से पापा आते हैं पर आकर खाना बनाने और खाना बनाना सिखाने के बजाय सीधे ही खाना बनाने के तरीकों के बारे में बच्चों से सिर्फ सवाल पूछते हैं। जबकि अन्य पाठों में जैसे- मां, दादी, चाची व नैना जन्मदिन की पार्टी के लिए क्या बनेगा इस पर चर्चा कर रही हैं। पुरुष कसरत करते हैं (पृ. 33-34 पाठ-5, कक्षा-3), मां बच्चों का नाश्ता तैयार करती है, सिलाई का काम करती है, दादी कहानी सुनाती है, पुरुष फैक्ट्री में काम करता है (पृ. 35, पाठ-6, कक्षा-3), जन्मदिन पर ढेर सारा भोजन बनाने में मां व्यस्त है (पृ. 29, पाठ-5, कक्षा-5), इत्यादि। इन सारे उदाहरणों का आप विश्लेषण करेंगे तो पाएंगे कि यह पाठ्यपुस्तकें लिंग, जाति, धर्म के आधार पर समता व न्याय जैसे मूल्यों की जरूरत व महत्त्व को सामने लाने में असफल ही नहीं होती हैं बल्कि मौजूदा पारंपरिक अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ही पुनःपोषित करती हैं। यहां सवाल यह उठता है कि क्या शिक्षा का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था को बनाए रखना होना चाहिए जो अन्याय पर आधारित है और उसी

व्यवस्था को पोषित करना है या फिर ऐसे मौके सृजित करना है जिसमें बच्चा अन्याय के बारे में सोचना सीखे, यह सोचना सीखे कि उसके परिवेश में जो हो रहा है वह वैसा ही क्यों हो रहा है और यदि उसमें बदलाव की जरूरत है तो वह क्यों है आदि। यानी आलोचनात्मक चिंतन कर पाने में सक्षम नागरिक जो कि लोकतांत्रिक समाज की अहम जरूरत होती है।

लिखित प्रसंग बनाम विविध वास्तविक अनुभव

सीखने में बच्चों के अनुभवों की महत्ता को शैक्षिक दुनिया में निर्विवाद व सहज रूप से स्वीकार किया जाता है। यह बात भी इन पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने के नजरिए (आमुख व शिक्षकों के लिए) में लिखी गई है। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि इन पाठ्यपुस्तकों के पाठों में 75 प्रतिशत मौकों पर सीखने की शुरुआत संवाद रूपी लिखित प्रसंग व घटनाओं से होती है। सीखने (पाठ) की शुरुआत में इस तरह के लिखित प्रसंगों के उपयोग को सीखने के संज्ञानात्मक एवं विकासवादी सिद्धांतों के आधार पर उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सीखना 'समायोजन' (accommodation) के द्वारा होता है। जब नए अनुभव पुराने अनुभवों या मौजूदा स्कीमा के साथ फिट नहीं हो पाते तो मानसिक असंतोष या असुंतलन (disequilibrium) पैदा होता है। इस असंतोष को दूर करने के लिए नए व पुराने अनुभवों के बीच 'समायोजन' की प्रक्रिया शुरू होती है जो 'मानसिक संतोष या संज्ञानात्मक संतुलन' (equilibrium or cognitive balance) बनाने की कोशिश होती है और सीखना इसी प्रक्रिया के दौरान होता है। या फिर सीखना बच्चे के पास पहले से मौजूद अवधारणाओं तथा इनके निकट की अज्ञात अवधारणाओं के बीच के क्षेत्र में होता है। इस बात को एनसीएफ 2005 में भी रेखांकित किया गया है, 'जो हम जानते हैं और जो हम लगभग जानते हैं' के बीच के क्षेत्र में नए ज्ञान का सृजन होता है (पृ. 20, 2.4.1, ज्ञान सृजन के लिए अध्यापन)। इस तरह सीखने के लिए जरूरी है कि शुरुआत हर बच्चे के अनुभवों से हो। इन अनुभवों का वास्तविक जीवन के साथ रिश्ता हो और बच्चों को अनुभव आधारित आगमन निष्कर्ष (inductive inference) निकालने के मौके हों क्योंकि सीखने या किसी कार्य में सफलता की संभावनाएं तब ज्यादा होती हैं जब वे बच्चे की वास्तविक जिंदगी व सामाजिक संदर्भों से संबंधित होते हैं।

लेकिन पाठ्यपुस्तक में सीखने की शुरुआत एक लिखित व बनावटी प्रसंग से होती है और यह प्रसंग विविधताओं से भरे हमारे समाज के बहुतायत बच्चों के वास्तविक व जीवंत पूर्वानुभवों को नहीं समेटते जो कि इन पाठ्यपुस्तकों के असल में पाठक होंगे। यह संदर्भ या प्रसंग कुछ विशेष वर्ग के बच्चों के अनुभवों के ही इर्द-गिर्द सिमटे रहते हैं। वह भी वर्ग विशेष की भाषा, अनुभव व संस्कृति की दृष्टि से बनावटी रूप में। इस तरह सीखने के मान्य सिद्धांतों के आधार पर पाठों की शुरुआत के तरीके को सीखने में मदद के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तरीका न सिर्फ मनोवैज्ञानिक नजरिए से अनुपयुक्त है बल्कि बहुतायत बच्चों के अनुभवों को शामिल नहीं करके सीखने के मौकों में भी अंतर पैदा करता है।

एक और बात जो कक्षा तीन के बच्चों के बारे में ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि इस कक्षा के बच्चे अभी भी भाषा सीखने और लिपि पर अधिकार हासिल करने की प्रक्रिया के नाजुक दौर में होते हैं। ऐसे में यदि पाठ की शुरुआत में ही उनका सामना एक लम्बे व बोझिल लिखित प्रसंग से हो जिसका उनकी जिंदगी से जुड़ाव भी नहीं है तो यह उन्हें सीखने के कर्म में लगाने व प्रेरित करने के बजाय सीखने में अरुचि या अलगाव पैदाकर स्कूल से बाहर धकेल सकता है।

विषयों की प्रकृति, अंवेषण एवं ज्ञान सृजन

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तकों में 'शिक्षकों के लिए' में कहा गया है कि पाठ्यपुस्तक विविध प्रकार के क्रियाकलापों के द्वारा, जो बच्चों को अवलोकन, खोज, वर्गीकरण, प्रयोग, चित्र बनाने, आदि तथा कक्षा के बाहर के परिवेश में उपलब्ध संसाधनों को आधार बनाकर सीखने का मौका देगी। इस बात की पड़ताल करने के लिए यदि बतौर बानगी कक्षा

तीन के पहले पांच व कक्षा पांच के आखिरी पांच पाठों में दिए गए निर्देश व सवालों (हालांकि सवालों की प्रकृति को समझने के लिए पुस्तक के सभी सवालों का विश्लेषण कर ज्यादा बेहतर तस्वीर सामने लाई जा सकती है) को देखा जाए तो इन दस पाठों (25 प्रतिशत) की तस्वीर कुछ इस तरह की बनती है (तालिका देखें)।

सूचना/तथ्य आधारित		98 (73.6 प्रतिशत)
कल्पना/अंदाजा आधारित		20 (15 प्रतिशत)
अवलोकन आधारित	स्कूल के अंदर	3 (2.2 प्रतिशत)
	स्कूल के बाहर	3 (2.2 प्रतिशत)
वर्गीकरण आधारित		5 (3.7 प्रतिशत)
विश्लेषण आधारित		4 (3 प्रतिशत)

पाठ्यपुस्तक में सूचना एवं जानकारी पर अत्यधिक बल दिया गया है। इनमें भी ढेरों सवाल ऐसे हैं जिनका ग्रामीण और वंचित वर्ग के बच्चों के अनुभवों से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं बनता। जबकि स्कूल के अंदर व बाहर अवलोकन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण के अवसर बहुत ही कम व सीमित हैं। जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं कि पाठ्यपुस्तकों में सीखने की शुरुआत बच्चों के वास्तविक अनुभवों के बजाय बनावटी प्रसंग से होती है, पुस्तक द्वंद्व को बच्चों के बीच लाने व उन पर संवाद आयोजित करने से कतराती है जो पाठ्यपुस्तक में ज्ञान सृजन के लिए सीखने के दावे के अनुरूप नहीं है। जैसा कि पाठ्यपुस्तक में कहा गया है ''एनसीएफ 2005 ने ज्ञान सृजन पर नई रोशनी डाली है जिसके अनुसार ज्ञान अनुभवों के विश्लेषण, स्वयं करके समझने एवं किसी बात का अर्थ क्या हो सकता है, इसकी व्याख्या करने का प्रयास है। ज्ञान तक पहुंचने का अर्थ है अन्य व्याख्याओं और मानक ज्ञान तथा सूचनाओं के साथ अपना खुद का संवाद स्थापित करना।'' मानक ज्ञान व व्याख्याओं के साथ संवाद तो दूर की बात है। पाठ्यपुस्तकें न तो बच्चों को ज्ञान निर्माण व अंवेषण की प्रक्रियाओं से गुजरकर अपनी व्याख्या व निष्कर्ष निकालने के व्यवस्थित अनुभव व अवसर देती हैं और न ही ज्ञान निर्माण के लिए आवश्यक क्षमताओं के विकास के समुचित व व्यवस्थित अवसर और परिस्थितियां उपलब्ध कराती हैं। जैसा कि कक्षा पांच की पाठ्यपुस्तक के आखिरी पांच पाठों को देखें (1. घरों के प्रकार पर, 2. चित्तौडगढ़ के बारे में, 3. पर्वतारोहण के औजार, तरीके व मुश्किलों के बारे में, 4. वाहनों के प्रकार, ईंधन व ट्रेफिक के नियमों के बारे में और 5. अंतरिक्ष की सैर पर) तो यह सारे पाठ सूचनाओं के ढेर से अटे पड़े हैं, जो न तो चीजों पर सवाल उठाते हैं, न बच्चों के अनुभवों को लाने के लिए जगह उपलब्ध कराते हैं, न विषय की प्रकृति के अनुसार अंवेषण (अवलोकन, सर्वे, वर्गीकरण, विश्लेषण, व्याख्या, निष्कर्ष, इत्यादि) के व्यवस्थित मौके देते हैं। इतना ही नहीं कई जगहों पर अवधारणात्मक भ्रम भी पैदा करते हैं जैसे कि कक्षा तीन और कक्षा पांच में 'घर' को लेकर कई पाठ हैं जो न तो घर, मकान व आश्रय स्थल की अवधारणाओं में फर्क करते हैं बल्कि जीव-जंतुओं के आवास को भी 'घर' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसी तरह पाठ्यपुस्तक के पाठों में यह फर्क पता नहीं चलता कि वे अवलोकन या वर्गीकरण जैसी क्षमता विशेष के विकास के लिए हैं या यह मानकर चलते हैं कि यह क्षमताएं व्यवस्थित रूप में बच्चों के पास पहले से मौजूद हैं और उनका उपयोग आगे सीखने में किया जाना है। यदि पाठ किसी क्षमता विशेष के विकास के लिए लक्षित है तो उसे बहुत ही व्यवस्थित रूप से सीखने के अवसर उपलब्ध कराने चाहिएं जो कि इन पुस्तकों में नहीं हैं और यदि उद्देश्य यह है बच्चों के पास पहले से व्यवस्थित रूप में मौजूद क्षमताओं (जो कि उस रूप में नहीं होतीं) का उपयोग करना है तो पाठ के द्वारा बच्चों को किन्हीं आगमनिक निष्कर्षों तक पहुंचने में मदद करने और इस शृंखला से गुजरने के मौके होने चाहिएं जो कि दोनों ही नहीं हैं। कई पाठों के नीचे नोट लिखा गया है कि इस पाठ का उद्देश्य यह है, यह नहीं। जैसा कि कक्षा पांच के पहले पाठ में लिखा है कि यह गतिविधियां अवलोकन को बढ़ाने के लिए हैं न कि अपेक्षित घनत्व या तैरने के सिद्धांतों और घुलने के सिद्धांतों को समझने के लिए। यहां सवाल उठता है कि यदि उद्देश्य अवलोकन की क्षमता का विकास करना है तो ऐसी परिचित और सहज विषयवस्तु व परिस्थितियां क्यों नहीं चुनी गईं जो अवलोकन की सटीकता और गहराई को सहज रूप से बढ़ाया जा सके। पाठ्यपुस्तक में ऐसी जटिल विषयवस्तु (तैरने और घुलने के जटिल अवलोकन व सिद्धांत) को चुना गया जो न तो निष्कर्षों तक पहुंचाती है और न ही ज्ञान निर्माण की अवलोकन या वर्गीकरण जैसी मूलभूत क्षमताओं के विकास में कोई सोचा-समझा व व्यवस्थित प्रयास करती है। इन आधारों पर कहा जा सकता है कि यह पाठ्यपुस्तकें ज्ञान सृजन के लिए सीखना तो

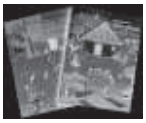

दूर सीखने के आम सिद्धांतों पर भी खरी नहीं उतरतीं और न सीखने की आवश्यक क्षमताओं के विकास पर व्यवस्थित रूप में काम करती दिखाई देती हैं, न ही विषयों की प्रकृति को समझने के लिए उनकी अंवेषण विधियों से परिचित करवाने के लिए प्रयासरत दिखाई देती हैं और न ही विषयवस्तु की बेहतर व स्पष्ट समझ को बच्चों के बीच ला पाती हैं।

पर्यावरण अध्ययन मौटे तौर पर विज्ञान, इतिहास, समाज विज्ञान व भूगोल जैसे विषयों का सम्मलित रूप होता है। पर इन पाठ्यपुस्तकों में इन विषयों को उचित व संतुलित प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है (तालिका देखें)।

विषय	पाठों की संख्या		
	कक्षा-3	कक्षा-5	कुल
कुल पाठ	18	22	40
समाज विज्ञान	13	11	24 (60 प्रतिशत)
प्राकृतिक विज्ञान	4	8	12 (30 प्रतिशत)
इतिहास	0	1	1 (2.5 प्रतिशत)
भूगोल	1	2	3 (7.5 प्रतिशत)

पाठ्यपुस्तक के कुछ पाठ ऐसे हैं जो एक से अधिक विषयों की विषयवस्तु को समेटते हैं। यहां उन पाठों को किसी एक विषय में रखने का आधार विषयवस्तु की मात्रा, विषय की मूलभूत चारित्रिक विशेषताओं व क्षमताओं पर बल एवं मात्रा के आधार पर किया गया है।

विषयों के प्रतिनिधित्व को देखने पर यह पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक के बजाय समाज विज्ञान व विज्ञान विषय की साझा पाठ्यपुस्तक ज्यादा लगती हैं जो अन्य विषयों के महत्त्व को कम करती हैं- कम से कम इतिहास व भूगोल के। जबकि इन विषयों का अध्ययन अस्मिता व वजूद के निर्माण व खोज, विज्ञान व समाज के वर्तमान व अतीत को समझने, चीजों के स्थानिक वितरण को समझने तथा इन विषयों की प्रकृति को समझकर सीखने में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने की दृष्टि से बहुत ही लाजमी हैं जिसकी अनदेखी यह पाठयपुस्तकें कर रही हैं।

इस सारे विश्लेषण के बाद 'मेरी दुनिया' नामक इन पाठ्यपुस्तकों को देखने पर निराशा ही हाथ लगती है और ऐसा लगता है कि इन पाठ्यपुस्तकों से सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समता व न्याय की उम्मीद करना बेमानी है, जैसी उम्मीद इन पाठ्यपुस्तकों की शुरुआत में किए गए दावों से बनती है। यह पाठ्यपुस्तकें न सिर्फ बेहतर सीखने के सिद्धान्तों को काम में लेने व संदर्भीकरण करने में असफल रही हैं बल्कि परंपरागत अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को पुनःप्रस्तुत करते हुए उसे बनाए रखने की दिशा में ही प्रयासरत दिखाई देती हैं। शायद इसीलिए इन पाठ्यपुस्तकों का नाम 'हमारी दुनिया' की जगह 'मेरी दुनिया' है, जो किसी खास वर्ग के बच्चों की दुनिया को ही प्रस्तुत करती हैं। यदि महिलाओं, अल्पसंख्यकों, दलितों और आदिवासियों और उनके बच्चों से किताबों की दुनिया के बारे में पूछा जाए तो वे सहज ही बता देंगे कि यह 'हमारी' नहीं, उनकी' दुनिया है। ◆